षट्त्रिंशत् वाद-विजेता श्रीजिनपतिसूरि

[महोपाध्याय विनयसागर]

मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के पट्टधर षटत्रिंशत् वाद विजेता श्रीजिनपतिसूरि का जन्म वि० सं० १२१० विक्रमपुर में मालू गोत्रीय यशोवर्द्धन की धर्मपत्नी सूहवदेवी की रत्न-कुक्षि से हुआ था। सं० १२१७ फाल्गुन शुक्ल १० को जिनचन्द्रसूरि के कर कमलों से दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा नाम नरपति था। सं० १२२३ कार्तिक शुक्ल १३ को बड़े महोत्सव के साथ युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरि के पादोपजीवी जयदेवाचार्य ने इनको आचार्य पद प्रदान कर जिनचंद्रसूरि के पट्टधर गणनायक घोषित किया। आचार्य पद के समय नाम जिनपतिसूरि प्रदान किया। वह महोत्सव जिनपतिसूरि के चाचा मानदेव ने किया था।

सं० १२२८ में विहार करते आशिका पधारे। आशिका के नृपति भीमसिंह भी प्रवेशोत्सव में सम्मिलित हुए थे। आशिका स्थित महा प्रामाणिक दिगम्बर विद्वान को शास्त्रार्थ में पराजित किया था।

सं० १२३९ कार्तिक शुक्ल ७ के दिन अजमेर में अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान की अध्यक्षता में फलवर्द्धिका नगरी निवासी उपकेश गच्छीय पद्मप्रभ के साथ आपका शास्त्रार्थ हुआ। इस समय राज्य में महामंत्री मण्डलेश्वर कैमास तथा वागीश्वर, जनार्दन गौड़, विद्यापति आदि प्रमुख विद्वान उपस्थित थे। प्रतिवादी पद्मप्रभ मूर्ख, अभिमानी एवं अनर्गल प्रलापी होने से शास्त्रार्थ में शीघ्र ही पराजित हो गया। जिनपतिसूरिकी प्रतिभा एवं सर्वशास्त्रों में असाधारण पाण्डित्य देखकर पृथ्वीराज चौहान बहुत प्रसन्न हुए और विजयपत्र हाथी के हौदे पर रखकर बड़े आडम्बर के साथ उपाश्रय में आकर आचार्य श्री को प्रदान किया।

सं० १२४४ में उज्जयन्त-शत्रुञ्जयादि तीर्थों की यात्रार्थ संघ सहित प्रयाण करते हुए आचार्यश्री चन्द्रावती पधारे। यहां पर पूर्णिमापक्षीय प्रामाणिक आचार्य श्री अकलङ्कदेवसूरि पांच आचार्य एवं १५ साधुओं के साथ संघ दर्शनार्थ आये। आचार्य श्री के साथ अकलङ्कदेवसूरि की 'जिनपति' नाम एवं संघ के साथ साधु-साध्वियों को जाना चाहिये या नहीं, इन प्रश्नों पर शास्त्रचर्चा हुई और आचार्य अकलंक इस चर्चा में निरुत्तर हुए।

इसी प्रकार कासहृद में पौर्णमासिक तिलकप्रभसूरि के साथ 'संघपति' तथा 'वाक्यशुद्धि पर चर्चा हुई जिसमें जिनपतिसूरि ने विजय प्राप्त की।

उज्जयन्त-शत्रुञ्जयादि तीर्थों की यात्रा करके वापिस लौटते हुए आशापल्ली पधारे। यहां वादिदेवाचार्य परम्परीय प्रद्युम्नाचार्य के साथ 'आयतन-अनायतन' पर शास्त्रार्थ हुआ जिसमें प्रद्युम्नाचार्य पराजय को प्राप्त हुए। इस शास्त्रार्थ का अध्ययन करने के लिये प्रद्युम्नाचार्य का 'वादस्थल' तथा जिनपतिसूरि का "प्रबोधोदय वादस्थल" ग्रन्थ द्रष्टव्य है।

आशापल्ली से आचार्यश्री अणहिल्लपुर पाटण पधारे। यहां पर अपने गच्छ के ४० आचार्यों को अपनी मण्डली में मिलाकर वस्त्रप्रदान पूर्वक सम्मानित किया।

सं० १२५१ में लवणखेटक में राणक केल्हण के आग्रह से 'दक्षिणावर्त्त आरात्रिकावतरणोत्सव बड़ी धूम-धाम से मनाया।

सं० १२७३ में बृहद्वार में नगरकोटीय राजाधिराज पृथ्वी चन्द्र की सभा में काश्मीरी पडित मनोदानन्द के साथ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्री की आज्ञा से जिनपालोपाध्याय ने शास्त्रार्थ किया। शास्त्रार्थ का विषय था "जैन दर्शन ब्राह्य हैं।" इस शास्त्रार्थ में पं० मनोदानन्द बुरी तरह पराजय को प्राप्त हुआ। राजा पृथ्वीचन्द्र ने जयपत्र जिनोपालोपाध्याय को प्रदान किया।

सं० १२७७ आषाढ़ शुक्ल १० को आचार्यश्री ने गच्छ-सुरक्षा की व्यवस्था कर वीरप्रभ गणि को गणनायक बनाने का संकेत कर अनशनपूर्वक स्वर्ग की ओर प्रयाण किया।

आचार्य जिनपतिसूरि कृत प्रतिष्ठायें, ध्वजदण्ड स्थापन, पदस्थापन महोत्सव, शताधिक दीक्षा महोत्सव आदि धर्म-कृत्यों का तथा आचार्य श्रीके व्यक्तित्व का अध्ययन एवं शिष्य प्रशिष्यों की विशिष्ट प्रतिभा का अंकन करने के लिये द्रष्टव्य है-जिनोपालोपाध्याय कृत 'खरतरगच्छ बृहद् गुर्वावली'

इस महत्वपूर्ण गुर्वावली के सम्बन्ध में मुनि जिनविजय जी ने इस प्रकार लिखा है :—

"इस ग्रन्थ में विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारंभ में होने वाले आचार्य वर्द्धमानसूरि से लेकर चौदहवीं शताब्दी के अंत में होनेवाले जिनपद्मसूरि तक के खरतर गच्छ मुख्य के आचार्यों का विस्तृत चरित वर्णन है। गुर्वावली अर्थात् गुरु परम्परा का इतना विस्तृत और विश्वस्त चरित वर्णन करनेवाला ऐसा और कोई ग्रन्थ अभी तक ज्ञात नहीं हुआ। प्रायः चार हजार श्लोक परिमाण यह ग्रन्थ है और इसमें प्रत्येक आचार्य का जीवन-चरित इतने विस्तार के साथ दिया गया है कि जैसा अन्यत्र किसी ग्रन्थ में किसी भी आचार्य का नहीं मिलता। पिछले कई आचार्यों का चरित तो प्रायः वर्षवार के क्रम से दिया गया है और उनके विहार क्रम का तथा वर्षा-निवास का क्रमवद्ध वर्णन किया गया है। किस आचार्य ने कब दीक्षा दी, कब आचार्य पदवी प्राप्त की, किस-किस प्रदेश में विहार किया, कहां-कहां चातुर्मास किये, किस जगह कैसा धर्मप्रचार किया, कितने शिष्य-प्रशिष्याएँ आदि दीक्षित किये, कहां पर किस विद्वान के साथ शास्त्रार्थ या वाद-विवाद किया, किस राजा की सभा में कैसा सम्मानादि प्राप्त किया—इत्यादि बहुत ही ज्ञातव्य और तथ्यपूर्ण बातों का इस ग्रन्थ में बड़ी विशद रीति से वर्णन किया गया है। गुजरात, मेवाड़, मारवाड़, सिन्ध, बागड़, पंजाब और विहार आदि अनेक देशों के अनेक गाँवों में रहने वाले सैकड़ों ही धर्मिष्ठ और धनिक श्रावक-श्राविकाओं के कुटुंबों का और व्यक्तियों का नामोल्लेख इसमें मिलता है और उन्होंने कहाँपर, कैसे पूजा-प्रतिष्ठा एवं संघोत्सव आदि धर्मकार्य किये, इसका निश्चित विधान मिलता है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रन्थ अपने ढंग की एक अनोखी कृति जैसा है। इस ग्रन्थ के आविष्कारक बीकानेर निवासी साहित्योपासक श्रीयुत अगरचन्दजी नाहटा हैं और इन्होंने ही हमें इस ग्रन्थ के संपादन की सादर प्रेरणा दी है। नाहटाजी ने इस ग्रन्थ का ऐतिहासिक महत्व क्या है और सार्वजनिक दृष्टि से भी किन-किन ऐतिहासिक बातों का ज्ञातव्य इसमें प्राप्त होता है यह संक्षेप में बताने का प्रत्यन किया है।

[भारतीय विद्या पुस्तक १ अंक ४ पृ० २६६]

आचार्य श्री की रचनाओं में संघपट्टक बृहद् वृत्ति, पंचलिङ्गी प्रकरण टीका, प्रबोधोदय वादस्थल, खरतरगच्छ समाचारी, तीर्थमाला आदि के अतिरिक्त कतिपय स्तुति स्तोत्रादि भी पाये जाते हैं।

आपके पट्टपर सुप्रसिद्ध विद्वान नेमिचन्द्र भाण्डागारिक के पुत्र वीरप्रभ गणि को सं० १२७७ माघ शुक्ल ६ को जावालिपुर (जालौर) के महावीर चैत्य में श्री सर्वदेवसूरि ने आचार्य पद देकर जिनेश्वरसूरि (द्वितीय) के नाम से प्रसिद्ध किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org